

आपाद-कण्ठमुरुश्रृंखल-वेष्टितांगा

गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघा ।

त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः

सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-

संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।

तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव

यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां

भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।

धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं

तं 'मानतुंग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

(पं. हेमराजजी कृत)

(दोहा)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।

धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥

(चौपाई)

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अन्तर पाप-तिमिर सब हरैं ।

जिनपद बंदों मन-वच-काय, भव-जल-पतित उतारन-सहाय ॥१॥

श्रुत पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव ।

शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल ॥२॥

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन ।

जल-प्रतिबिम्ब बुध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै ॥३॥

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार ।

प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज-बलवन्त ॥४॥

सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहीं डरूँ।
 ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥
 मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम।
 ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव ॥६॥
 तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम-जनम के पाप नशाहिं।
 ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिबत नील निशा-तम-जाल ॥७॥
 तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार।
 ज्यों जल-कमल-पत्र पै पुरै, मुक्ताफल की द्युति विस्तारै ॥८॥
 तुम गुन-महिमा हत-दुःख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष।
 पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम ॥९॥
 नहीं अचम्भ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत।
 जो अधीन को आप समान, करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥
 इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय।
 को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान ॥११॥
 प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
 हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु ॥१२॥
 कहूँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार।
 कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक ॥१३॥
 पूरन-चन्द्र-ज्योति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंगंत।
 एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥
 जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ।
 अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर ॥१५॥
 धूमरहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह।
 वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड ॥१६॥
 छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं, जग-परकाशक हो छिनमाहिं।
 घन अनवर्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह ।
तुम मुख-कमल अपूर्व चंद, जगत विकासी जोति अमन्द ॥१८॥
निशादिन शशि रवि को नहीं काम, तुम मुखचंद हरै तम घाम ।
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥
जो सुबोध सोहै तुममाहिं, हरि हर आदिकमें सो नाहिं ।
जो द्रुति महा-रतन में होय, काँच-खण्ड पावै नहीं सोय ॥२०॥

(नाराच छन्द)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया ।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ॥
कछु न तोहि देख के जहाँ तुही विशेषिया ।
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया ॥२१॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं ।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै ।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो ।
कहैं मुनीश अन्धकार-नाश को सुभान हो ॥
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके ।
न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके ॥२३॥
अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो ।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो ।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं ।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं ।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं ॥२५॥

नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो ।
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो ॥
नमों करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो ।
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥२६॥

(चौपाई)

तुम जिन पून गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे ।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥२७॥
तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित है अविकार ।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥२८॥
सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र ।
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥२९॥
कुन्द-पहुप-सित-चमर दुखंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत ।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरै नीर उमगांति ॥३०॥
ऊंचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ।
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छबि लहैं ॥३१॥
दुन्दुभि-शब्द गहर गम्भीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर ।
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय ख उच्चरै ॥३२॥
मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार ॥३३॥
तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द ।
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥
स्वर्ग-मोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत ।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध ॥३५॥

(दोहा)

विकसित-सुवन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं ।

तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।

सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७॥

(षट्पद)

मद-अवलिस-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारै ।

तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥

काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं ।

ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं ॥

देखि गयन्द न भय करै, तुम पद-महिमा छीन ।

विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥

अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भथल नखन विदारै ।

मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥

बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै ।

भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ॥

ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय ।

शरण गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय ॥३९॥

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर ।

बमें फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर ॥

जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों ।

तडतडाट दव-अनल जोर चहुँ दिशा उठानो ॥

सो इक छिन में उपशमें, नाम-नीर तुम लेत ।

होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥४०॥

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता ।

रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलन्ता ॥

फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया ।

तब जन होय निशंक देख फणिपति को आया ॥

जो चाँपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगाय ।

नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ॥४१॥

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घन-से गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम ॥
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥४२॥

मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जल-सम विस्तारै ॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे।
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरै ॥
दुर्जय अरिकुल जीत के, जय पावैं निकलंक।
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक ॥४३॥

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै।
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगम्भीर लहर की गिनती न ताकी ॥
सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहिं।
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥४४॥

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ठ आदि जो रोग गहै हैं ॥
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा।
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा ॥
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अनंग ॥४५॥

पाँव कंठतैं जकर बाँध साँकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं जिन जाँघ विदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दुःखजे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बन्दीखाने ॥

तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं ।
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल ।
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै ।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ॥
इस अपार संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय ।
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥४७॥
यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी ।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं ।
‘मानतुंग’ ते निजाधीन-शिव-लछमी पावैं ॥
भाषा भक्तामर कियो, ‘हेमराज’ हित हेत ।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत ॥४८॥

(दोहा)

दया दान पूजा शील पूँजी सों अजानपने,
जितनी ही तू अनादि काल में कमायगो ।
तेरे बिन विवेक की कमाई न रहे हाथ,
भेद-ज्ञान बिना एक समय में गमायगो ॥
अमल अखंडित स्वरूप शुद्ध चिदानन्द,
याके वणिज माहिं एक समय जो रमायगो ।
मेरी समझ मान जीव अपने प्रताप आप,
एक समय की कमाई तू अनन्त काल खायगो ॥